विजय-याग

शुद्ध कीजिये

पृष्ठ	मन्त्र-संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
२२	५०	दक्षिणाम्	दक्षिणम्
२४	६२	ब्रह्मणास्पतिरदितिः	ब्रह्मणस्पतिरदितिः
२५	६८	नोचैः	नीचैः
२६	७३	एम्यो	एभ्यो
२६	७४	एम्यो	एभ्यो
३५	१२४	नक्ततमभयं	नक्तमभयं

पृष्ठ ३३ पर मन्त्र ११२ निम्न प्रकार पढ़िये—

ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च ।
असीन्परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि ।
सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥ (अ ११-९-१)

$\frac{125}{45}$ H

234278

विजय-याग की महिमा

सितम्बर १६६२ में जब ऋषियों की पवित्र भूमि भारत मही आर्यावर्त पर चीनियों ने विश्वासघातपूर्ण आक्रमण किया, तो सारे देश में सहसा अनेक स्थानों पर "विजय-यज्ञ" किये जाने लगे। कोई "विजययज्ञ-पद्धति" उपलब्ध न होने के कारण, कहीं किसी एक मन्त्र से आहुतियां दी जारही थीं, तो कहीं किसी अन्य मन्त्र से। करते यह थे कि संस्कारविधि में पठित प्रार्थना, स्वस्तिवाचन तथा शान्तिपाठ करने के उपरान्त सामान्य हवन करके किसी एक मन्त्र को युद्धपरक मानकर उस एक मन्त्र से यथेच्छ आहुतियां दी जाती थीं। स्थान-स्थान पर प्रयुक्त होनेवाले मन्त्रों की सूचनायें जब मुझे मिलीं, तो मुझे इस अव्यवस्था पर आश्चर्य हुआ और मैंने "विजय-याग" की रचना करने का निर्णय किया।

संस्कारों में प्रयुक्त होनेवाले प्रकरणों का "विजय-याग" में प्रयोग प्रत्यक्षत: असंगत था। मैंने निर्णय किया कि जिस प्रकार "स्वस्ति-याग" की रचना के लिये मैंने चारों वेदों का आद्योपान्त पारायण किया था, उसी प्रकार "विजय-याग" की रचना के लिये भी चारों वेदों का पारायण किया जाये और "विजय-याग" के लिये मन्त्रों के चयन में अन्त:प्रेरणा का आश्रय लिया जाये।

वह एक सुसंयोग की बात थी कि मार्गशीर्ष कृ० १०, २०१९, बुधवार, २१ नवम्बर १९६२ के प्रातः मैंने "विजय-याग" का लेखन प्रारम्भ किया और उसके कुछ घण्टे बाद ही श्री यशवन्तराव बी. चह्वाण ने भारत के रक्षामन्त्री का चार्ज संभाला और उसी मध्याह्न चीन ने पेकिंग रेडियो से अपनी ओर से एकपक्षीय युद्धविराम तथा अपनी सेना हटाने की घोषणा की। मुझे लगा कि "विजय-याग" की मद्रचित पद्धति सद्यः सुफल-दायिनी सिद्ध होगी।

न केवल धर्म्य युद्धों में विजयार्थ अपि तु न्याय्य संघर्षों तथा स्पर्धाओं में भी इसका अनुष्ठान सफलता प्रदान करनेवाला होगा। वैर-विरोधों को परास्त करके शुभ श्रेष्ठ लक्ष्य की ओर प्रगति करने की भावना से भी "विजय याग" किया जाये। आधियों, व्याधियों और आपत्तियों को टालने के लिये भी इसका अनुष्ठान विहित है। विश्व-व्याप्ति, विश्व के आर्यकरण तथा सार्वभौम आर्य साम्राज्य की प्रस्थापना के लिये भी इस पद्धति से यज्ञ किया जाये। पद्धति लघु है, किन्तु महत्त्वपूर्ण है। धर्म्य तथा न्याय्य के लिये ही यह अनुष्ठान है।

"विजय-याग" का अनुष्ठान करते हुए पद्धति में परिवर्तन तथा अन्य मन्त्रों का प्रयोग कदापि न किया जाये, इस विषय में बहुत सावधानी वर्तने की आवश्यकता है।

शुभ-काम,

विद्यानन्द विदेह

याग-व्यवस्था

१) यज्ञस्थल लीप-पोत या धो कर रोचक और शोभनीय बनाया जाये।

२) यज्ञवेदि एक अनुभवी ऋत्विज के निरीक्षण में तैयार की जाये।

३) घृत नितान्त शुद्ध हो। गौ का हो तो और भी अच्छा।

४) हवनसामग्री भी नितान्त शुद्ध हो।

५) ब्रह्मा के विराजने के लिये, यज्ञवेदि के दक्षिण में अथवा जिधर सुविधा हो, ऊंची सुन्दर चौकी बिछायें। उस पर सुन्दर वस्त्र बिछाकर ऊपर एक उत्तम आसन बिछायें। ब्रह्मा के चौकी पर विराज जाने पर यजमान तथा अन्य इच्छुक जन ब्रह्मा के गले में गोटा अथवा फूलों की माला पहनाकर ब्रह्मा का पूजन [सत्कार] करें।

६) यजमान तथा यजमान-पत्नियां यज्ञवेदि के चारों ओर बैठें। पत्नी पति के वाम अङ्ग में बैठे। स्त्री या पुरुष अकेले भी यजमान बन सकते हैं।

७) दर्शक ब्रह्मा के सामने की दिशा में बैठें।

८) ब्रह्मा के साथ मन्त्रों का उच्चारण वे ही व्यक्ति करें, जो मन्त्रों का पाठ अत्यन्त शुद्धता के साथ कर सकें। शेष सब उपस्थित व्यक्ति मौनरूपेण मन्त्रों का ध्यानपूर्वक अवलोकन करते रहें, जिससे वे मन्त्रों का शुद्ध पाठ सीख जायें।

९) यजमान घृत की तथा यजमानपत्नियां हवि [सामग्री] की आहुतियां दें ।
१०) घृत तपाकर छाना जाये । सामग्री धूप में सुखाकर शोधी जाये ।
११) घृत की आहुति एक माशे की और सामग्री की आहुति तीन माशे की हो । अधिक की नहीं ।
१२) यज्ञ का सम्पूर्ण कार्यक्रम एक घण्टे का है । मन्त्रों के बोलने में शीघ्रता नहीं होनी चाहिये, अपितु स्पष्टता और दृढ़ता होनी चाहिये ।
१३) यज्ञ का आरम्भ सूर्योदय के बाद किसी भी समय किया जा सकता है, किन्तु पूर्णाहुति दोपहर के १२ बजे तक अवश्य हो जानी चाहिये ।
१४) यज्ञ की सम्पूर्ति पर यज्ञस्थल पर चौको पर विराजे हुए ही ब्रह्मा के चरणों में यजमान तथा यजमानपत्नियां तथा अन्य जन पुष्कल द्रव्य, मेवा, फल, नारियल, वस्त्र, पात्र आदि श्रद्धापूर्वक भेंट करें ।
१५) तत्पश्चात् प्रसाद-वितरण ।
१६) ब्रह्मा को विदा करने से पूर्व यजमान और यजमानपत्नी उसे स्वयं भोजन करायें ।

ब्रह्मा

१) ब्रह्मा वेदों का विद्वान हो, प्रयुक्त मन्त्रों के अर्थ समझने और उनकी व्याख्या करने की योग्यता रखता हो, शुद्धोच्चारण करता हो।

२) ब्रह्मा वातावरण को अतिशय श्रद्धोपेत, निष्ठामय तथा ओजपूर्ण रखे।

३) यज्ञारम्भ करने से पूर्व ब्रह्मा यज्ञस्थल, घृत, सामग्री, समिधा, कपूर तथा अन्य समस्त उपकरणों का निरीक्षण करे और देखे कि सब कुछ स्वच्छ और सुव्यवस्थित है।

४) यज्ञस्थल में ब्रह्मा उन्हीं वस्त्रों को धारण करे, जो यजमान की ओर से यज्ञार्थ समर्पित किये गये हों। वस्त्र बिना सिले हों—धोती, उपवस्त्र और अंगोछा या तौलिया। शरद-ऋतु हो तो एक शाल या हल्का कम्बल और हो।

ब्रह्मा-वरण

यजमान—ओमावसोः सदने सीद।

ब्रह्मा—ओं सीदामि।

यजमान—अहमद्य विजययागकरणाय भवन्तं वृणे।

ब्रह्मा—वृतोऽस्मि।

ब्रह्मा का यजमान तथा यजमानपत्नी को सम्बोधन

आप सब एकाग्र मन से दत्तचित्त होकर पूर्ण आस्था और विश्वास के साथ "विजययाग" का अनुष्ठान करें। इस यज्ञ में चारों वेदों के विजय साफल्य के मन्त्रों का पाठ होगा। मैं प्रभु से मंगल कामना करता हूं कि मंगलमय भगवान् आपकी मनःकामना पूरी करें और आपकी तथा आपके परिवार, समाज और राष्ट्र की पूर्ण विजय करायें।

सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ (य १२/४४)

आचमन-तीन

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।

शं योरभि स्रवन्तु नः ॥ [ऋ १०-९-४, य ३६/१२ साम ३३, अ १-६-१]

इस मन्त्र को एक बार बोलकर तीन आचमन करें।

अङ्गस्पर्श

ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताम् (य १८/२९) —मस्तिष्क

चक्षुर्यज्ञेन कल्पताम् (य १८/२९) —नेत्र

श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम् (य १८/२९)—कर्ण

प्राणो यज्ञेन कल्पताम् (य १८/२९)—नासिका

वाग्यज्ञेन कल्पताम् (य १८/२९) —मुख

पृष्ठं यज्ञेन कल्पताम् (य १८/२९) —पींठ

मनो यज्ञेन कल्पताम् (य १८/२९)—हृदय

आत्मा यज्ञेन कल्पताम् (य १८/२९)—हृदय

यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् (य १८/२९)—सम्पूर्ण शरीर

प्रार्थना

१) त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि सं च्छुक्र आततः ।

सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ (साम ८३)

(ते त्वेषः धूमः) तेरा ज्वलन्त प्रकाश (ऋण्वति) जगमगा रहा है, तेरा (शुक्रः) तेज, पूत सौन्दर्य (दिवि सं आततः) द्यौ में सम्यक् सर्वत्र फैला हुआ है ।

(पावक) पवित्रकर्तः ! (त्वं) तू (द्युता) स्वदीप्ति से तथा (कृपा) स्वशक्ति से (सूरः न हि) सूर्य के समान ही (रोचसे) शोभायमान होरहा है ।

२) ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।

शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश्चिद्येषां बृहत् सुकीर्तिर्बोधति त्मना ॥ (ऋ ५-१०-४)

(अग्ने) प्रकाशस्वरूप देव ! (चन्द्र) आह्लादक देव ! (ये ते गिरः) जो तेरे स्तोता [भक्त] हैं, वे (अश्व-राधसः शुम्भन्ति) आशु-धनैश्वर्यों से सुशोभित रहते हैं । तेरे भक्त (नरः) नर (शुष्मेभिः) ऐसे संबलों से—(येषां दिवः चित् बृहत् सुकीर्तिः) जिनकी द्यौ से भी विशाल सुकीर्ति होती है—(शुष्मिणः) बलवान् होकर (त्मना बोधति) आत्मना बोधते हैं, आत्मबोध प्राप्त करते हैं ।

३) **यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान् यथाप ओषधीषु यशस्वतीः ।**
एवा विश्वेषु देवेषु वयं सर्वेषु यशसः स्याम ।। (अ ६-५८-२)

(यथा इन्द्रः द्यावापृथिव्योः यशस्वान्) जैसे सूर्य द्यौलोक और पृथिवीलोक के बीच में यशस्वी है; (यथा आपः ओषधीषु यशस्वतीः) जैसे जलधारायें वनस्पतियों में यशस्विनी हैं; (एवं) वैसे ही (विश्वेषु देवेषु) समस्त देवों में, सब दिव्य गुणों में (वयं) हम (सर्वेषु) सबमें, सर्वाधिक (यशसः स्याम) यशस्वी रहें ।

४) **ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।**
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्त्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ।। (अ ५-३-१)

(अग्ने) तेजःपुञ्ज प्रभो ! (वि-हवेषु मम वर्चः अस्तु) संघर्षों में मेरा वर्चस्व हो । (त्वा इन्धानः) तुझे प्रकाशित करते हुए, तेरी महिमा बढ़ाते हुए (वयं तन्वं पुषेम) हम जीवन को पुष्ट रखें । (मह्यं चतस्रः प्रदिशः नमन्तां) मेरे लिये चारों दिशायें झुकें/नमस्कार करें । हम (त्वया अध्यक्षेण पृतनाः जयेम) तेरी अध्यक्षता से संग्रामों को विजय करें ।

५) **वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।**

अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥ (अ ७-५०-४)

(इन्द्र) सर्वशक्तिमन् ! (त्वया युजा) तुझसे युक्त होकर (वयं वृतं जयेम) हम मोर्चे-मोर्चे को विजय करें। तू (भरे-भरे) संग्राम-संग्राम में (अस्माकं अंशं) हमारे पक्ष को/की (उत्-अव) उत्तमतया रक्षा कर। (अस्मभ्यं वरीयः सुगं कृधि) हमारे लिये विजयश्री सुगम कर। (मघवन्) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (शत्रूणां वृष्ण्या प्र-रुज) शत्रुओं के बलों को तोड़ दे ॥

६) **परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।**

परार्चिषा मूरदेवान् छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥ (अ ८-३-१३)

(अग्ने) जाज्वल्यमान् प्रभो ! (तपसा यातुधानान् परा-शृणीहि) तप से अत्याचारियों को कुचल दे, (हरसा रक्षः परा-शृणीहि) हरणसामर्थ्य से राक्षसों को परे धकेल दे, (अर्चिषा मूर-देवान् परा-शृणीहि) ताप से मूढ़-पापियों को छिन्न भिन्न करदे, (शोशुचतः) धधक कर (असु-तृपः परा-शृणीहि) भोगी-विलासियों को भस्म करदे।

७) प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ (ऋ १०-१२१-१०)

(प्रजा-पते) प्रकृष्ट जनों की रक्षा करनेवाले ! (एतानि ता विश्वा जातानि) इन उन सब समुत्पन्नों को (त्वत् अन्यः न परि-बभूव) तुझसे भिन्न [अन्य कोई] नहीं व्यापा हुआ है ।

(यत्-कामाः) यत्कामी हम, जो-जो कामनायें करनेवाले हम (ते जुहुमः) तेरे प्रति प्रार्थना करें, (नः तत् अस्तु) हमारी वह-वह [कामना पूरी] हो । (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम ऐश्वर्यों के स्वामी हों ।

अग्न्याधान

भूर्भुवः स्वः (य ३६/३)—इससे अग्नि लाना या कपूर जलाना ।

भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।

तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे (य ३/५)

इससे अग्नि को यज्ञवेदिमें रखना ।

अग्नि-प्रज्वलन

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सं सृजेथामयं च ।

अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत । (य १५/५४)

समिधाधान

१. समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।

आस्मिन् हव्या जुहोतन ।। स्वाहा ।। इदमग्नये इदं न मम ।। (य ३/१)

२. सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन ।

अग्नये जातवेदसे ।। स्वाहा ।। इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम (य ३/२)

३. तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि ।

बृहच्छोचा यविष्ठ्य ।। स्वाहा ।। इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदं न मम ।। (य ३/३)

पञ्चघृताहुतयः

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि ।

बृहच्छोचा यविष्ठ्य ।। स्वाहा ।। इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदं न मम ।। (य ३/३)

इस मन्त्र से घृत की पांच आहुतियां दें ।

जल-सिञ्चन

देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय ।

दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।। (य ३०/१)

इस मन्त्र से यज्ञवेदि के चारों ओर एक साथ जल-सिञ्चन करें ।

१२ इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि ।
जयेम सं युधि स्पृधः ।। (ऋ १-८-३)

१३ वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् ।
सासह्याम पृतन्यतः ।। (ऋ १-८-४)

१४ नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः ।
जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ।। (ऋ १-१०-८)

१५ सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ।। (ऋ १-११-२)

१६ मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य ।
रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ।। (ऋ १-१८-३)

१७ य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ।। (ऋ १-१९-७)

१८ स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी ।
यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ (ऋ १-२२-१५)

१९ हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा ।
मा नो दुःशंस ईशत ॥ (ऋ १-२३-९)

२० जयतामिव तन्यतुर्मरुतामेति धृष्णुया ।
यच्छुभं याथना नरः ॥ (ऋ १-२३-११)

२१ ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो ।
समन्येषु ब्रवावहै ॥ (ऋ १-३०-६)

२२ अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाऽहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः ॥ (ऋ १-३२-५)

२३ देवास्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ॥ (ऋ १-३६-४)

२४ पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥ (य १-३६-१५)

२५ त्वेषासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये ।
रक्षस्विनः सदमिद् यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह ॥ (ऋ १-३६-२०)

२६ स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ (ऋ १-३९-२)

२७ परा ह यत् स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु ।
वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ॥ (ऋ १-३९-३)

२८ नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः ।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥ (ऋ १-३९-४)

२९ वि दुर्गा वि द्विषः पुरो घ्नन्ति राजान एषाम् ।
नयन्ति दुरिता तिरः ॥ (ऋ १-४१-३)

३० यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति ।
अप स्म तं पथो जहि ॥ (ऋ १-४२-२)

३१ त्वं तस्य द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्य चित् ।
पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ॥ (ऋ १-४२-४)

३२ युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥ (ऋ १-५३-७)

३३ उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि ।
धनंजयो रणेरणे ॥ (ऋ १-७४-३)

३४ यो नो अग्ने ऽभिदासत्यन्ति दूरे पदीष्ट सः ।
अस्माकमिद् वृधे भव ॥ (ऋ १-७९-११)

३५ सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी रक्षांसि सेधति ।
होता गृणीत उक्थ्यः ॥ (ऋ १-७९-१२)

३६ यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना ।
विध्यता विद्युता रक्षः ॥ (ऋ १-८६-९)

३७ तं स्मा रथं मघवन् प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥(ऋ १-१०२-३)

३८ वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥ (ऋ १-१०२-४)

३९ नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥ (ऋ १-१०२-५)

४० मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥
(ऋ १-११४-८)

४१ रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने ।
अस्माकं वीराँ उत नो मघोनो जनाँश्च या पारयाच्छर्म या च ॥ (ऋ १-१४०-१२)

४२ त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन् पाह्यसुर त्वमस्मान् ।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ (ऋ १-१७४-१)

४३ मा नो अग्नेऽव सृजो अघायाऽविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।
मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन् परा दाः ॥ (ऋ १-१८९-५)

४४ यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥ (ऋ २-१२-९)

४५ बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान् ।
यथा जघन्थ धृषता पुरा चिदेवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ॥ (ऋ २-३०-४)

४६ विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।
सोमापूषणाववतं धियं मे युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम ॥ (ऋ २-४०-५)

४७ ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् ॥ (ऋ ४-४-५)

४८ त्वद् विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद् वीरासो अभिमातिषाहः ।
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन्त्स्पृहयाय्याणि ।। (ऋ ६-७-३)

४९ वयं त एभिः पुरुहूत सख्यैः शत्रोः शत्रोरुत्तार इत् स्याम ।
घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर राया मदेम बृहता त्वोताः । (ऋ ६-१९-१३)

५० परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणाम् ।
पुनर्नो नष्टमाजतु ।। (ऋ ६-५४-१०)

५१ अस्य ते सख्ये वयं तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ।
सासह्याम पृतन्यतः ।। (ऋ ९-६१-२९)

५२ इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तो अराव्णः ।।(ऋ ९-६३-५)

५३ स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः ।। (ऋ १०-१५२-२)

५४ वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ।। (ऋ १०-१५२-३)

५५ वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ।। (ऋ १०-१५२-४)

५६ अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।
वि मन्योः शर्म यच्छ वरीयो यवया वधम् ।। (ऋ १०-१५२-५)

५७ आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे,
राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां, दोग्ध्री
धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः, पुरन्धिर्योषा, जिष्णू रथेष्ठाः
सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां, निकामेनिकामे
नः पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां,
योगक्षेमो नः कल्पताम् ।। (य २२/२२)

५८ धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ (य २९/३९)

५९ उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून् ॥ (य २९/५५)

६० आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥ (य २९/५७)

६१ अमित्रसेनां मघवन्नस्मां शत्रुयतीमभि ।
उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥ (सा १८६५)

६२ यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ (सा॰१८६६)

६३ अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे ।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥ (अ १-२९-१)

६४ ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ।। (अ २-१७-१)

६५ सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ।। (अ २-१७-२)

६६ बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ।। (अ २-१७-३)

६७ समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम् ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ।। (अ ३-१९-२)

६८ नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् ।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ।। (अ ३-१९-३)

६९ एषामहमायुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि ।
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्ण्वेषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ।। (अ ३-१९-५)

७० उद्धर्षन्तां मघवन्वाजिनान्युद्वीराणां जयतामेतु घोषः ।
पृथग्घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम्
देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ।। (अ ३-१९-६)

७१ प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः ।
तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः ॥ (अ ३-१९-७)

७२ प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम
एभ्यो अस्तु । योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ (अ ३-२७-१)

७३ दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम
एभ्यो अस्तु । योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ (अ ३-२७-२)

७४ प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम
एभ्यो अस्तु । योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ (अ ३-२७-३)

७५ उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम
एभ्यो अस्तु । योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ (अ ३-२७-४)

७६ ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम
एभ्यो अस्तु । योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ (अ ३-२७-५)

७७ ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम
एभ्यो अस्तु । योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ (अ ३-२७-६)

७८ त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणा हृषितासो मरुत्वन् ।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना उप प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥ (अ ४-३१-१)

७९ अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून्वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥ (अ ४-३१-२)

८० एको बहूनामसि मन्य ईडिता विशंविशं युद्धाय सं शिशाधि ।
अकृत्तरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि ॥ (अ ४-३१-४)

८१ अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान्तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥ (अ ४-३२-३)

८२ ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥ (अ ५-३-१)

८३ उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन्वानस्पत्यः संभृत उस्त्रियाभिः ।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंह इव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि ॥ (अ ५-२०-१)

८४ वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्नभि रुव संधनाजित् ।
शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान्प्रच्युता यन्तु शत्रवः ॥ (अ ५-२०-३)

८५ संजयन्पृतना ऊर्ध्वमायुर्गृह्या गृह्लानो बहुधा वि चक्ष्व ।
दैवीं वाचं दुन्दुभ आ गुरस्व वेधाः शत्रूणामुप भरस्व वेदः ।। (अ ५-२०-४)

८६ विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे ।
विद्वेषं कश्मशं भयममित्रेषु नि दध्मस्यवैनान्दुन्दुभे जहि ।। (अ ५-२१-१)

८७ उद्वेपमाना मनसा चक्षुषा हृदयेन च ।
धावन्तु बिभ्यतोऽमित्राः प्रत्रासेनाज्ये हुते ।। (अ ५-२१-२)

८८ ज्याघोषा दुन्दुभयोऽभि क्रोशन्तु या दिशः ।
सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकशः ।। (अ ५-२१-९)

८९ यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः ।। (अ ५-२१-११)

९० एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः ।
अमित्रान्नो जयन्तु स्वाहा ।। (अ ५-२१-१२)

९१ यो नः सोम सुशंसिनो दुःशंस आदिदेशति ।
वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति ॥ (अ ६-६-२)

९२ निर्हस्तः शत्रुरभिदासन्नस्तु ये सेनाभिर्युधमायन्त्यस्मान् ।
समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामघहारो विविद्धः ॥ (अ ६-६६-१)

९३ आतन्वाना आयच्छन्तोऽस्यन्तो ये च धावथ ।
निर्हस्ताः शत्रवः स्थनेन्द्रो वोऽद्य पराशरीत् ॥ (अ ६-६६-२)

९४ निर्हस्ताः सन्तु शत्रवोऽङ्गैषां म्लापयामसि ।
अथैषामिन्द्र वेदांसि शतशो वि भजामहै ॥ (अ ६-६६-३)

९५ परि वर्त्मानि सर्वत इन्द्रः पूषा च सस्रतुः ।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां परस्तराम् ॥ (अ ६-६७-१)

९६ भद्रादधि श्रेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु ।
अथेममस्या वर आ पृथिव्या आरेशत्रुं कृणुहि सर्ववीरम् ॥ (अ ७-८-१)

९७ अग्ने जातान्प्र णुदा मे सपत्नान्प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवोऽनागसस्ते वयमदितये स्याम ।। (अ ७-३४-१)

९८ वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ।। (अ ७-५०-४)

९९ गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ।। (अ ७-५०-७)

१०० इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरंदरः ।
यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः ।। (अ ८-८-१)

१०१ बृहद्धि जालं बृहतः शक्रस्य वाजिनीवतः ।
तेन शत्रूनभि सर्वान्न्युब्ज यथा न मुच्यातै कतमश्चनैषाम् ।। (अ ८-८-६)

१०२ बृहत्ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य ।
तेन शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया ।। (अ ८-८-७)

१०३ विश्वे देवा उपरिष्टादुब्जन्तो यन्त्वोजसा ।
मध्येन घ्नन्तो यन्तु सेनामङ्गिरसो महीम् ।। (अ ८-८-१३)

१०४ वनस्पतीन्वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।
द्विपाच्चतुष्पादिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ।। (अ ८-८-१४)

१०५ इम उप्ता मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे ।
अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः ।। (अ ८-८-१६)

१०६ घर्मः समिद्धो अग्निनायं होमः सहस्रहः ।
भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्व सेनाममूं हतम् ।। (अ ८-८-१७)

१०७ मृत्योराषमा पद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम् ।
इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्व सेनाममूं हतम् ।। (अ ८-८-१८)

१०८ पराजिताः प्र त्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा ।
बृहस्पतिप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ।। (अ ८-८-१९)

१०९ अव पद्यन्तामेषामायुधानि मा शकन्प्रतिधामिषुम् ।
अथैषां बहु बिभ्यतामिषवो घ्नन्तु मर्मणि ।। (अ ८-८-२०)

११० सं क्रोशतामेनान्द्यावापृथिवी समन्तरिक्षं सह देवताभिः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ।। (अ ८-८-२१)

१११ इतो जयेतो वि जय सं जय स्वाहा ।
इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यः ।
नीललोहितेनामूनभ्यवतनोमि ।। (अ ८-८-२४)

११२ ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च ।
असीन्परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि ।। (अ ११-९-१)

११३ उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ।। (अ ११-९-२)

११४ उत्तिष्ठतमा रभेथामादानसंदानाभ्याम् ।
अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥ (अ ११-९-३)

११५ उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय ॥ (अ ११-९-५)

११६ तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ॥ (अ ११-९-२६)

११७ उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह ।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥ (अ ११-१०-१)

११८ सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ (अ १२-१-१)

११९ इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू ।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्वर्यत् ॥ (अ १९-१३-१)

१२० आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ।। (अ १९-१३-२)

१२१ अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान्देवासोऽवता हवेषु ।। (अ १९-१३-११)

१२२ इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा ।
मा नः सेना अररुषीरुप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय ।। (अ १९-१५-२)

१२३ अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ।। (अ १९-१५-५)

१२४ अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।। (अ १९-१५-६)

१२५ येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन् ।
तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ।। (अ १९-२४-१)

१२६ भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ।। (अ १९-४१-१)

पूर्णाहुति

पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरा पत ।
वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जं शतक्रतो ।। स्वाहा ।। (य ३/४९)
पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय ।
तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम ।। स्वाहा ।। (अ ७-८०-१)
पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ।। स्वाहा ।। (अ १०-८-२९)

जय-घोष

१. **जयेम सम्**

२. **युधि स्पृधः** (ऋ १-८-३)

१. विजय करें हम,

२. युद्ध में शत्रुओं को ॥

१. **त्वयाध्यक्षेण**

२. **पृतना जयेम** (अ ५-३-१)

१. अध्यक्षता में तेरी प्रभो,

२. विजय करें हम संग्रामों को ॥

१. **अस्माकं वीराः**

उत्तरे भवन्तु (अ १९-१३-११)

१. वीर हमारे उत्तरोत्तर,

बढ़ते जायें विजय-पथ पर ॥

जागरण

वयं राष्ट्रे जागृयाम ।। (य ९/२३)

रहें जागते,

सतत निरन्तर

प्रिय राष्ट्र में,

मातृभूमि में ।।

तन मन धन से,

इस जीवन से,

जन कुटुम्ब से,

करें राष्ट्र की सेवा सन्तत,

रहें सजग और सावधान हम,

मातृभूमि की सुखद गोद में ।।

राष्ट्र-गान

[खड़े होकर]

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे,
राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्,
दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः,
पुरन्धिर्योषा,
जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्,
निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु,
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्,
योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

य० २२/२२

ब्रह्मन् ! (राष्ट्रे) राष्ट्र में (ब्राह्मणः ब्रह्म-वर्चसी आ-जायताम्) नेतृवर्ग ज्ञान-तेज से युक्त रहे, (राजन्यः) नागरिकवर्ग (शूरः इषव्यः अतिव्याधी महारथः आ-जायताम्) शूर, सशस्त्र, व्याधि-निवारक महारथी रहे, (दोग्ध्री धेनुः) दुधार गौवर्ग, (वोढा अनड्वान्) भारवाहक बैलवर्ग,

(आशुः सप्तिः) शीघ्रगामी अश्ववर्ग, (पुरं-धिः योषा) पुर-रक्षिका युवतीवर्ग। (अस्य यजमानस्य) इस यज्ञशील [राष्ट्र] का (युवा) युवक-वर्ग, (जिष्णुः रथे-स्थाः सभेयः वीरः जायताम्) विजयशाली, युद्धयानों पर स्थित होनेवाला, सभाव्यास और वीर हो। (नः) हमारे लिये (निकामे-निकामे) कामना-कामना में (पर्जन्यः वर्षतु) मेंह बरसे। (नः) हमारे लिये (ओषधयः) वनस्पतियां (फलवत्यः) फलवती होकर (पच्यन्ताम्) पकें। (नः) हमारा (योगक्षेमः) योगक्षेम (कल्पताम्) संसिद्ध होता रहे।